गाथा GAATHA ISSN : 3049-3463 (Online)

# स्त्री विमर्श की अवधारणा

✍ डॉ० कुमारी आभा
असिस्टेंट प्रोफ़ेसर,
एस. पी. जैन कॉलेज सासाराम, रोहतास

मानव जीवन के दो रूप है पुरुष और स्त्री द्य प्रारम्भ में दोनों का अस्तित्व सामान रूप से एक दूसरे पर निर्भर था। समय के साथ दोनों के अधिकार और कर्तव्य का रूप बदला। पुरुष बाहर का कार्य संभालने लगा और स्त्री घर की देखभाल करने लगी द्य कालान्तर में पुरुष स्त्री पर हावी होने लगा और उसे गुलाम की तरह व्यवहार करने लगा। उसको शिक्षा और संपत्ति से वंचित कर दिया गया द्य इतना तक कि उसे चल संपत्ति की तरह जुए के दाव पर रखा जाने लगा। मध्य युग की अमानवीय और अवैज्ञानिक नैतिकता ने पुरुष के लिए जो स्वछंदता और मर्दानगी माना उसे ही स्त्री के लिए कुलटा कहकर अपमानित किया द्य यही कारण है कि साहित्यकार भी यौन–चर्चा पर कतराते नजर आए द्य सभी धर्मों में प्रेम को वर्जित कर दिया गया। तब मानवीय यंत्रणा की शिकार नारी अपनी अस्मिता की रक्षा के लिए कटिबद्ध हुई द्यइहीं से स्त्री के मन में पुरुष के प्रति आक्रोश का जन्म हुआ। वह अपने अधिकारों के लिए संघर्ष करने को विवश हुई द्य यही संघर्ष नवजागरण काल में स्त्री विमर्श के रूप में सामने आया। स्त्री की समस्याओं को लेकर साहित्यकार सजग हुए और अपनी रचनाओं के माध्यम से सतह पर लाने की कोशिश की। उन साहित्यकारों में पुरुष और स्त्री दोनों की सहभागिता रही। किन्तु महिला साहित्यकारों ने अपने भोगे हुए यथार्थ को जिस रूप में प्रस्तुत किया वह अपने आप में काफी प्रभावशाली सिद्घ हुआ। पश्चिम के शिमोन द बोउआर से लेकर भारत के प्रभा खेतान तक स्त्री विमर्श की एक लम्बी परम्परा रही है जिसपर प्रकाश डालना ही यहाँ अभीष्ट है।

'स्त्री–विमर्श' एक वैश्विक विचारधारा है जो पितृसत्तात्मक समाज के विरोध में स्त्रियों के संघर्ष को रेखांकित करता है। यह स्त्रियों के सम्मान और अस्तिव के संघर्ष की लम्बी कहानी है जिसमें विश्व के महान साहित्यकारों एवं नारीवादी आंदोलनकारियों का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। यह एक ऐसा विमर्श है जो जाति, धर्म, प्रांत और देश की सीमा को तोड़कर पूरी स्त्री जाति के अस्तित्व को स्थापित करने के लिए प्रतिबद्ध है। इस प्रतिबद्धता में स्त्री और पुरुष दोनों सहभागी रहे हैं किन्तु स्त्रियों का आक्रोश कुछ ज्यादा ही मुखर रहा है। वह अपने ऊपर हो रहे अन्याय, अत्याचार, शोषण, उत्पीड़न और उपेक्षा का जोरदार विरोध करती नजर आती है। वास्तव में स्त्री–विमर्श स्त्रियों के ऊपर होने वाले सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, धार्मिक एवं सांस्कृतिक रूप से मानसिक और शारीरिक दबाव डालने वाली पारंपरिक रूढ़ियों का वैचारिक आन्दोलन है। यह पितृसत्तात्मक समाज के दोहरे नैतिक मापदंडों, मूल्यों एवं अंतर्विरोधों को समझने की अंतर्दृष्टि है।

स्त्री–विमर्श की शुरुआत मूल रूप से पश्चिम में हुआ जब "1857 ई० में संयुक्त राज्य अमेरिका में महिलाओं एवं पुरुषों के समान वेतन को लेकर हड़ताल हुई थी। इसी दिन को बाद में अंतर्राष्ट्रीय महिला दिवस के रूप में मनाया गया। इसी के साथ विश्व भर में नारी मुक्ति आंदोलन की शुरुआत हुई।"[1]

भारत में स्त्री विमर्श की शुरुआत सामाजिक रूप से नवजागरण काल में ही दिखाई देने लगता है जब राजा राम मोहन राय ने सती–प्रथा के खिलाफ आंदोलन खड़ा किया। उनके प्रयत्नों के फलस्वरूप 1829 में लार्ड विलियम बेंटिक ने सती–प्रथा को गैर कानूनी घोषित किया। ईश्वर चंद विद्यासागर ने भी भारतीय विधवाओं की स्थिति में सुधार का प्रयास किया। किन्तु मनुवादियों के विरोध के कारण वह उतना कारगर साबित न हो सका। स्वामी विवेकानंद और स्वामी दयानंद सरस्वती ने लड़कियों की शिक्षा पर विशेष जोर दिया। किन्तु मनुवादियों ने लड़कियों के शिक्षा को भी विरोध किया। उनका कहना था कि "लड़कियों को भी पढाइए किन्तु उस चाल से नहीं जैसे आजकल पढ़ाई जाती है जिससे उपकार के बदले बुराई होती है। ऐसी चाल से उनको शिक्षा दीजिए कि वह अपना देश और कुलधर्म सीखे, पति की भक्ति करे और लड़कों को सहज में शिक्षा दे।"[2]

स्त्रियों की स्वतन्त्रता और समानता के लिए कई महिला सुधारकों ने अपनी मत्वपूर्ण भूमिका अदा की जिसमें रमाबाई, ताराबाई शिंदे, सावित्री बाई फुले आदि महत्वपूर्ण हैं। सावित्री बाई फुले ने स्त्रियों के सुधार के लिए 1852 ई० में 'महिला सेवा मंडल" की स्थापना की। स्त्रियों के लिए 1848 से 1852 तक लगभग 18 पाठशालाएं खोलीं। उनका कहना था कि जबतक महिलाएं शिक्षित नहीं होंगी तबतक समाज का विकास नहीं हो सकता। ताराबाई ने 1852 ई० में 'स्त्री–पुरुष–तुलना' के माध्यम से समाज में स्त्री की वास्तविक स्थिति का चिंतन किया। रमाबाई ने 1882 ई० में अपनी पुस्तक 'स्त्री धर्म नीति' के माध्यम से स्त्रियों को जागृत कर उन्हें स्वावलंबन और स्वतन्त्रता का पाठ पढ़ाया। 1883 ई० में उन्होंने पितृसत्ता के विरोध में 'द हाई कास्ट हिन्दू विमेन' नामक पुस्तक लिखी। विधवाओं और परित्यक्ताओं के लिए 'शारदा सदन' की स्थापना की।

स्वतन्त्रता आंदोलन के साथ ही महिलाओं की समस्या के प्रति जागरूकता बढ़ती गयी। तत्कालीन पत्र–पत्रिकाओं एवं साहित्यिक रचनाओं में उसे देखा और परखा जा सकता है द्य प्रेमचंद का 'निर्मला' उपन्यास और शिवपूजन सहाय रचित 'कहानी का प्लौट' शीर्षक कहानी उसका सशक्त उदाहरण है जहां तिलक और दहेज़ की बलिवेदी पर बलिदान होती स्त्री के दर्द को उकेरा गया है। आगे चलकर डा० राजेंद्र यादव ने 'स्त्री–विमर्श' को आक्रामक रूप से आगे बढाया। इसके संबंध में संजीव कुमार लिखते हैं–"जिन दो बहसों के लिए 'हंस' को सबसे अधिक ख्याति प्राप्त हुई वे हैं–दलित–विमर्श और स्त्री–विमर्श। इन दोनों विमर्शों की सबसे बड़ी सार्थकता यह है कि इन दो समस्याओं पर खुलकर और अधिक बोल्ड तरीके से लिखा जाने लगा।"[3]

स्त्री–मुक्ति आन्दोलन का हिस्सा रही रमणिका गुप्ता पुरुषों की मानसिकता को रेखांकित कराती हुई लिखती हैं–" मुझे बाजारवादी माडल, फिल्मी दुनिया की या फैशन सेलिब्रिटी स्त्रियों से बिलकुल

एतराज नहीं है, बस खलता है उसके सौन्दर्य का मापदंड पुरुष–निर्धारित होना। क्योंकि पुरुष प्रायः स्त्री की देह को देखता है, देहधारी की क्षमता और ज्ञान को नजर अंदाज कर देता है। स्त्री कितनी ज्ञानवान है, कितनी सामाजिक है, कितनी गुणवान या ईमानदार है यह पुरुषों के लिए मायने नहीं रखता। बस कितनी मुग्धकारी तस्वीर–सी लगती है वह, यही उनकी कसौटी है।"[4]

स्त्री को अपने अस्तित्व का बोध न हो और वह अपने अस्तित्व के लिए संघर्ष न कर सके इसके लिए उसे स्वप्निल दुनिया के काल्पनिक अमूर्त बंधनों में बाँध दिया गया जहां वह अपने सौन्दर्य, कोमकता और उदारता पर गर्व कर सहर्ष पुरुषों पर अपने को पुरुषों पर न्योछावर कर सके उसे बताया गया कि तुम औरत नहीं एक आदर्श माँ हो, आदर्श बहन हो, आदर्श बेटी और आदर्श पत्नी हो। इसके संबंध में सोनी सिंह लिखती हैं–"यह कोई उनमें प्राकृतिक उपज नहीं थी बल्कि आरोपित थी जिसे उसने कालान्तर में आत्मसात कर लिया, शायद यही वजह है कि वह भी अब अपनी इस काल्पनिक व्याख्या में ही पूरा मानव होने का सुख ढूढती रहती है।"[5]

स्त्री–शोषण का मूल आधार पितृसत्तात्मक घर जहां स्त्री अपने पारिवारिक दायित्वों को निभाती हुई 'आँचल में दूध और आँखों में पानी लिए घुट–घुट कर जीती–मरती रहती है।

इस पर सविता सिंह लिखती हैं–"घरेलू जीवन या घर इस तरह वह पहली परत है असमान, शोषण पर आधारित और अमानवीय व्यवस्था की जिसपर पितृसत्तात्मक व्यवस्था टिकी हुई है।"[6]

इसके संबंध में रीमा भाटिया लिखती हैं–"दरअसल हमारे पितृसत्तात्मक समाज का ढांचा ही ऐसा है जिसमें वंश की निरंतरता और विरासत बेटों के द्वारा ही सुरक्षित मानी जाती है। इसके साथ ही बेटों को बुढ़ापे में आर्थिक और सामाजिक सहायक के रूप में भी देखा जाता है। इसके विपरीत लड़कियां तो पराया धन होती हैं।...कल को मैं बीमार होउंगा तो मुझे कौन देखेगा ?"[7]

स्त्री–विमर्श के धरातल पर नारी अस्मिता से जुड़ी पहली समस्या है उसकी देह से मुक्ति। देह से मुक्ति का मतलब लैंगिकता को त्यागना नहीं है बल्कि लैंगिक भेद–भाव की यंत्रणा से मुक्ति का है। इसके संबंध में राजेंद्र यादव लिखते हैं–"सबसे पहले तो स्त्री को देह के स्तर पर ही मुक्त होना पडेगा, क्योंकि नैतिकता, संस्कृति, धर्म और देह शुचिता के सारे बंधन स्त्री–देह को लेकर ही है।"[8]

पितृसत्तात्मक व्यवस्था का सारा जंजाल स्त्री की उसी उन्मुक्त चेतना को बाधित करने के लिए रचा गया है। भारतीय ही नहीं सारा वैश्विक इतिहास पौराणिक ग्रंथों, मिथकों और संस्कृतियों के जरिए बताता रहा है कि पुरुष तंत्र का अर्थ है स्त्री की स्वतंत्र अस्मिता पर पुरुष की नृशंसता, शारीरिक सबलता और षड्यंत्रकारी मानसिकता की विजय का महा अनुष्ठान। परिवार, विवाह, न्याय, धर्म जैसी संस्थाएं इसके बाद की सामाजिक संरचनाएं हैं, जो तत्परता से पुरुष के निजी हितों की रक्षा और संवर्धन के कार्य से जुड़कर उसी अनुपात में स्त्री को हीं कुलटा साबित करती रहती है। इस तरह स्त्री के मनोबल को तोड़ने के लिए उसकी देह को ही हथियार बनाया जाता है।

जातीय वर्चस्व और पुरुष मानसिकता का परिचय देते हुए रमणिका गुप्ता ने इस बात को उजागर किया है कि किस तरह हरियाणा में प्रेम विवाह को लेकर 'ऑनर किलिंग' होता है। पंचायत यह निर्णय देती है कि दोनों को मार दो। पंजाब में कहीं–कहीं तो ऐसे निर्णय हुए हैं कि बलात्कार की शिकार लड़की का भाई, बलात्कारी लड़के की बहन का बलात्कार करे। मतलब एक और निरपराध लड़की को बलात्कार का शिकार बनाया जाय। यही वह पुरुष मानसिकता है जिससे मुक्त होने के लिए नारीवादी आंदोलन शुरू हुआ।

स्त्री विमर्श को लेकर ढेर सारे साहित्यिक रचनाएं की गयीं जिससे इस आंदोलन को काफी बल मिला। राजेंद्र यादव ने अपने संपादकीय में इसे काफी आक्रामक बनाया और एतत्सम्बंधित रचनाओं को प्रमुखता से प्रकाशित किया। स्त्री–विमर्श एक वैश्विक आन्दोलन रहा है। भूमंडलीकरण के दौर में इसे लेकर काफी चर्चाएँ हुईं। आज उसी का परिणाम है कि नारी सशक्तिकरण एक प्रभावी नारा बन चुका है।

## सन्दर्भ ग्रन्थ–


1. डा. मंदाकिनी मीणा एवं डा. अनिरुद्ध कुमार 'सुधांशु', अस्मिता मूलक विमर्श और हिंदी साहित्य, नटराज प्रकाशन, 2016, पृष्ठ–31
2. स्त्री लेखन स्वप्न और संकल्प, पृष्ठ–46
3. जनकृति अंतरराष्ट्रीय पत्रिका के जनवरी–मार्च 2017 संयुक्त अंक में प्रकाशित आलेख
4. स्त्री मुक्ति संघर्ष और इतिहास, रमणिका गुप्ता, पृष्ठ–48
5. स्त्री विमर्श : अगला दौर, सं० राजेंद्र यादव, अक्षर प्रकाशन, पृष्ठ 42–43
6. वही पृष्ठ–56
7. स्त्री विमर्श : अगला दौर ,सं० राजेंद्र यादव, अक्षर प्रकाशन, पृष्ठ 265
8. स्त्री विमर्श–अगला दौर–समाधान मांगती स्त्री विमर्श, अक्षर प्रकाशन, पृष्ठ 6–7


❐